E Content for student of Patliputra University Patna.

Course-B.A Hons,Part-1, Paper-2.

Subject-Hindi.

(संदर्भ-गद्य विधाएं- नाटक चंद्रगुप्त- जयशंकर प्रसाद)

Title/heading of Topics-*चंद्रगुप्त नाटक के आधार पर प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता पर प्रकाश डालें।

---डॉ प्रफुल्ल कुमार एसोसिएट प्रोफेसर ,अध्यक्ष- हिन्दी विभाग आरआरएस कॉलेज मोकामा। पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना।

साहित्यिक गुणों से संपन्न प्रसाद के नाटक रंगमंच के अनुपयुक्त हैं । वे सुपठनीय हैं पर अभिनेय नहीं। प्रसाद के समय से ही उनके नाटकों के संबंध में यह टिप्पणी प्रतिध्वनित होने लगी थी। जनार्दन भट्ट ने प्रसाद जी की नाट्य कला के संबंध में लिखा है –"अब प्रश्न यह है कि नाटक कैसे होने चाहिए । हिंदी में नाटक का अभाव है। जो भी बने हैं उटपटांग या किसी के सिर का पता नहीं है तो किसी के पैर का। बनाने वाले हिंदी भाषा के धुरंधर विद्वान जरूर हैं पर अपनी जिंदगी भर में चार आने खर्च करके कोई नाटक नहीं देखा, खेलने की कौन कहे? इनके पढे हुए नाटक पढ़ने योग्य हो सकते हैं पर खेलने लायक नहीं"। इसी तरह की टिप्पणी सन 1930 में कालिदास कपूर ने 'एक घूंट' नाटक की समीक्षा में की है-" जय शंकर प्रसाद जी छायावादी कवि हैं, दार्शनिक नाट्यकार हैं और विशुद्ध हिन्दी के लेखक हैं। इसलिए आप के नाटक उच्च श्रेणी के होते हुए भी न अभिनय करने योग्य हैं न सुबोध हैं" ।

आलोचकों ने अभिनय पक्ष की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों पर कई आक्षेप किए हैं। जैसे नाटक का विस्तृत आकार, लंबे कथाकथन ,जटिल और काव्यमय भाषा, गीतों का आधिक्य, दृश्य विधान की जटिलता एवं अनुपयुक्तता, आरोपित दार्शनिकता ।प्रसाद के नाटक आकार की दृष्टि से बड़े होते हैं। नाटक अपने मूल रूप में सारी रात्रि में समाप्त नहीं होता। प्रसाद के कथोपकथन कथा विकास में पात्रों की मनो भावनाओं की अभिव्यक्ति में समर्थ तो है पर कहीं -कहीं उनका विस्तार अभिनय में बाधक प्रतीत होता है। चंद्रगुप्त आदि नाटकों के संवाद अधिकतर लंबे हैं ।कवि और प्रकृति प्रेमी होने के कारण उनके नाटकों के संवाद काव्य में प्रभाव से युक्त होकर कृत्रिम प्रतीत होने लगते हैं । उनके नाटकों में सरसता , भावुकता तो आती है पर रंगमंच पर वे काव्य में प्रलाप सा लगते हैं । दो-चार स्थलों पर ऐसे संवाद नाटकीय सौंदर्य में वृद्धि करने वाले और पात्र के भावुक, कल्पनामय,गीतिमय व्यक्तित्व को उभारने वाले हो सकते थे ।किंतु प्रायः अनावश्यक स्थलों पर जल्दी या बार-बार अधिकतर पात्रों से काव्य में संवाद कहला देने से नाटक की सहजगति अवरुद्ध हो जाती है। गहन दार्शनिकता से भी संवाद बोझिल होकर अस्वाभाविक एवं कमजोर हो गए हैं। पात्र जहां भी तत्व निरूपण में विचारों के उहापोह में आत्म चिंतन की प्रवृत्ति में उलझ जाते हैं,वहां उनके भाषण जैसे लंबे जटिल रहस्यमय में लगते हैं ।जैसे 'अजातशत्रु' में कारायण और शक्ति मती के संवाद। 'स्कंदगुप्त', में चाणक्य का लंबा भाषण अनावश्यक और दुर्बोध लगता है। ऐसे दार्शनिकता से बोझिल कथोपकथनों से कथा विकास और गतिशीलता में भी बाधा पड़ती है ।चरित्र भी निर्जीव हो जाते हैं । दर्शकों की रसमग्नता में भी अवरोध आता है। प्रसाद के नाटकों के कथोपकथनों में स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, संभाषण पटुता यथार्थवादी तथा सहज प्रवाह के स्थान पर अलंकरण ,गंभीरता, कवित्व भावात्मकता, चमत्कार वृत्ति अधिक है। प्रसाद के नाटकों के कथन में स्वगत कथन के अतिरेक का दोष है। यद्यपि सिद्धान्ततः

प्रसाद स्वगत कथनों को अस्वाभाविक मानते थे। फिर भी उनके प्रारंभिक नाटकों में स्वगतोक्ति का बड़ा यथारूप देखने को मिलता है। अंतिम तीन चार नाटकों में स्वगत अपेक्षाकृत स्वाभाविक बनकर आए हैं। स्कंदगुप्त के प्रारंभ में ही उसका स्वगत नाटकीय स्थिति के अनुरूप होने के कारण उसकी गूढ़ आत्म दशा को व्यक्त करने और वातावरण की सृष्टि करने के कारण रंगमंचोपयोगी है। किंतु मातृ गुप्त के स्वगत अनावश्यक एकांकी प्रलाप लगते हैं। चंद्रगुप्त के भी कुछ स्वगत भाव प्रकाशन की दृष्टि से सुंदर हैं और चाणक्य के कुछ स्वगत लंबे- लंबे भाषण से उबा देने वाले हैं ।वस्तुतः स्वगतों का अतिरेक उनका अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रयोग बार-बार पात्रों का स्वगत के साथ ही प्रवेश कराना पात्रों के सामने की मंच पर पात्र का स्वगत कथन बड़ा ही अशोभनीय और हास्यास्पद प्रतीत होता है।

प्रसाद का गीतिकाव्य जहाँ नाटक में सौंदर्य सृष्टि करता है, वहाँ नाटक को अरंगमंचीय ही बनाता है ।उनके गीत मात्र कल्पना प्रसूत नहीं है वरन मानवीय अनुभूतियों से युक्त है। वह पात्रों का चरित्र उद्घाटन करते हैं। कहीं-कहीं नाटक की एकरसता को भी दूर करते हैं ।उनके कुछ गीत तो नाटक और काव्य दोनों दृष्टि से बड़े सुंदर हैं। चंद्रगुप्त नाटक में-" तुम कनक किरन के अंतराल में" " हिमाद्रि तुंग श्रृंग से" स्कंद गुप्त का "आह वेदना मिली विदाई" अजातशत्रु में "भीड़ मत खींचे बीन के तार" श्यामा का "निर्जन गोधूलि, ध्रुवस्वामिनी में नर्तकी का नृत्य गीत आदि बड़े ही प्रभावपूर्ण और उपयुक्त गीत है ,परंतु गीतों का आधिक्य किसी भी पात्र से किसी भी समय गीत गवा देना, पात्र विशेष का जैसे देवसेना का बार-बार गाने लगना आदि ऐसे नाटकीय दोष हैं जो मंच पर अत्यंत अस्वाभाविक लगते हैं। बहुत से गीत छायावादी कविता बन कर रह गये हैं, जिनका नाटक के कथानक की परिस्थिति से कोई घनिष्ठ संबंध नहीं है, पर इनका अत्यधिक प्रयोग इन्हें निष्प्रयोजन बना देता है। चंद्रगुप्त नाटक में सुवासिनी के चले जाने पर मंच पर अकेले राक्षस रहता है।नेपथ्य गान होता है जिससे राक्षस को चिंतन एवं मूक अभिनय का अवसर प्राप्त होता है। दर्शकों को व्यस्त रखकर मनोरंजन भी करता है। यदि सर्वत्र प्रसाद जी ने इस औचित्य को ध्यान में रखा होता तो उनकी गीत योजना रंगमंच दोष का भागीदार नहीं होती। प्रसाद जी के नाटकों की भाषा शैली भी वाद-विवाद का विषय है। उस पर क्लिष्टता, अलंकार बाहुल्य ,काव्य मयता आदि आरोप लगाए जाते हैं। उनकी भाषा संस्कृत निष्ठ भाव प्रवण और अलंकार प्रधान है। कहीं-कहीं इतिहास, पात्र, युग भारतीयता की दृष्टि से भाषा बड़ी उदात्त, गंभीर प्रवाह और सटीक लगती है, किंतु अधिक अलंकरण अधिक कल्पना और भावुकता के कारण वह नाटकोपयुक्त नहीं लगती। सहज रूप में अर्थ बोध नहीं हो पाता है। इसलिए प्रसाद के नाटक एक विशिष्ट वर्ग के हैं और विशिष्ट वर्ग के दर्शकों के लिए हैं।

दृश्य योजना से अभिनय का घनिष्ठ संबंध है। दृश्य विधान सरल ,सुगम, सुविधाजनक मंच के उपयोगी होना चाहिए। और शीघ्र तथा अधिक परिवर्तन भी नहीं होना चाहिए। चंद्रगुप्त का दृश्य विधान अत्यंत जटिल निराशाजनक त्रुटिपूर्ण है ।एक ही अंक में कई दृश्य हैं और वे पृथक- पृथक सज्जा चाहते हैं। जिसे शीघ्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है ।स्कंद गुप्त का दृश्य विधान इसकी तुलना में कम जटिल और त्रुटिपूर्ण है। ध्रुवस्वामिनी दृश्य विधान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है 3 अंक हैं तीनों में एक-एक दृश्य। प्रत्येक अंक के अंत में यवनिका का पतन होता है, जिससे दृश्य योजना एवं मंच सज्जा में आसानी होती है।

प्रश्न यह नहीं कि प्रसाद के नाटक रंगमंच पर अभिनीत हो सकते हैं या नहीं पर महत्वपूर्ण यह है कि रंगमंच पर अभिनीत होने के पश्चात क्या वे दर्शकों पर प्रभाव डाल सकते हैं ।विभिन्न जगहों की विभिन्न संस्थाओं द्वारा इनके नाटकों के मंचन का समय-समय पर आयोजन होता रहा है। यह प्रदर्शन सफल और संतोषजनक हुए

ऐसा नहीं कहा जा सकता है। शिक्षण संस्थाओं द्वारा भी इनके नाटक मंचित होते रहे और नाटककार प्रसाद के प्रति श्रद्धा भावना के द्वारा कुछ इन्हें सफल भी करते रहे।

प्रसाद के नाटकों पर तुरंत अनेक आरोप लगाना निरर्थक और असमीचीन है। उनके नाटकों की परीक्षा उन्हीं के युग और उस समय की प्रचलित नाट्य परंपरा के संदर्भ में करनी चाहिए ।प्रसाद जी अपने युग को हिंदी नाटक को नई दिशा, नई प्रेरणा देते हैं। साथ ही कला के नए सिद्धांत नए नए मानदंड भी स्थापित करते हैं। प्रसाद जी का ध्यान नाट्य कथानकों को जीवन के गंभीर प्रश्न भारतीय सभ्यता संस्कृति, मर्यादा, आदर्शों से जोड़ने का, नाटक को केवल मनोरंजन का विषय न बनाकर रस अनुभूति देने में समर्थ और प्रेरक बनाना था। उनका उद्देश्य नाटक को असाहित्यिक और अनुचित से साहित्यिक, औचित्य और औदात्य प्रदान करना था। उनके नाटक प्रचलित नाट्य परंपरा के विशेषकर पारसी कंपनियों के नाटक के प्रतिक्रिया स्वरुप है। वह अपने नाटकों में सभी गुण ला सके, पर अभिनय के सौंदर्य की कम झलक उनके नाटकों में मिलती है। क्योंकि उनके युग में रंगमंच की कोई पुष्ट परंपरा नहीं थी ।निश्चित स्वरूप नहीं था। जनता गीतों भावुकता एवं भाषण की आदी थी ।फिर भी अंत तक आते-आते उन्होंने नाटक को इतिहास धर्म-दर्शन ,संस्कृति ,विज्ञान ,कला, राजनीति, विज्ञान ,अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि धाराओं से युक्त किया। प्रस्तुतीकरण के संबंध में नाटककार प्रसाद जी ने कहा था-" मेरी रचनाएं 'तुलसी दत शैदा'या आगा हश्र की व्यवसायिक रचनाओं के साथ नहीं नापी- तौली जानी चाहिए। मैंने उन कंपनियों के लिए नाटक नहीं लिखे हैं जो चार चलते अभिनेताओं को एकत्र कर कुछ ऐसा जुटाकर चार पर्दे मंगनी मांग लेती है और दुअन्नी- अठन्नी की टिकट पर इक्के वाले, खोमचे वाले और दुकानदारों को बटोर कर जगह-जगह प्रदर्शन करती फिरती हैं। यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता सुरुचि संपन्न सामाजिक और पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जाए तो ये नाटक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। हालांकि कलकत्ता प्रयाग और वाराणसी की चारों प्रस्तुतियां सुशिक्षित सुरुचि संपन्न प्रबुद्ध अभिनेताओं तथा प्रस्तुतकर्ताओं से संबद्ध होने बावजूद अभीष्ट प्रभाव नहीं डाल सकी ।रत्नाकर रसिक मंडल के नाट्य प्रदर्शन में भी साधनों की तैयारी में कोई कमी नहीं रखी गई थी। प्रसाद जी के नाटक के सफल प्रदर्शन एवं उनसे प्रभाव सृष्टि की सभी शर्तें पूरी होने के बावजूद भी अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल सके ।

प्रसाद को विश्वास था कि आवश्यक रंगमंचीय सुविधाओं की उपलब्धि होने पर उनके नाटक रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत हो सकेंगे इसलिए कुछ समीक्षकों को विश्वास है। मंचन की कितनी ही कठिनाइयों के बावजूद प्रसाद के नाटकों को दिन अपेक्षित मंच मिलेगा। इसमें कोई संदेह नहीं इसलिए एनएसडी के प्रदर्शन के बाद निर्देशिका सांता गांधी करती है- **"कलकत्ते में प्रदर्शन के अनुभव से मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है कि ऐसे गंभीर नाटक को प्रस्तुत करने के लिए जरूरी समुचित साधनों ,अभिनय प्रतिभा और पर्याप्त समय सुलभ हो तो यह नाटक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है और जरूर किया जाना चाहिए ।--आशा करनी चाहिए कि कभी न कभी यह अवश्य संभव हो सकेगा"।**

पर यह कब संभव हो सकेगा? अपेक्षित मंच मिलने का इंतजार कब तक करना पड़ेगा? यह अलग प्रश्न है? रंगमंच की दृष्टि से उनके नाटक भले ही पूंजी न बन गए हों पर नाट्य साहित्य कोश में यह अवश्य ही अक्षय है ।इसमें कोई संदेह नहीं इसलिए श्रीमती शांता गांधी ने सही ही कहा है-" **हिंदी भाषा में, बल्कि सच पूछें तो देश की भाषा में अच्छे नाटक बहुत नहीं कि हम प्रसाद के नाटकों को लापरवाही से उड़ा दें"।** यह शुभ संकेत है कि हमारे देश का हिंदी रंगमंच उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर है। रंगमंच के कलात्मक विकास को एक साथ नाट्य कर्मियों एवं

प्रस्तुतकर्ताओं की क्षमता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है। नाटक मात्र प्रस्तुतीकरण नहीं, ग्रहण भी है। दर्शकों द्वारा उसकी ग्राहयता में ही उसकी सार्थकता है।सुसंपन्न रंगमंच एवं अत्याधुनिक रंगमंचीय तकनीक के द्वारा प्रसाद के नाटक मंचित हो कर दर्शकों द्वारा ग्राहय भी होंगे इस अपेक्षा की हमेशा उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

******